तहराइन का संग्राम—1192 ई०

(Battle of Tarain – 1192 A.D.)

करनाल से सात मील दूर स्थित तराइन के मैदान में गोरवंशज शहाबुद्दीन गौरी जो कालान्तर में मुइजुद्दीन मुहम्मद (मौहम्मद गौरी) के नाम से जाना गया तथा भारत के महान सेनानी और वीर राजा पृथ्वीराज चौहान के मध्य यह पहला संग्राम हुआ था। मुहम्मद गौरी ने भारत पर कई बार आक्रमण किये। उसका पहला आक्रमण 1175 ई० में मुल्तान पर हुआ था। मुहम्मद गौरी के इन आक्रमणों की श्रृंखला में, वास्तव में तराइन के मैदान में, दो बार उसकी लड़ाई पृथ्वीराज चौहान से हुई। तराइन की पहली लड़ाई 1191 ई० में हुई। इस लड़ाई में पृथ्वीराज चौहान तथा मुहम्मद गौरी की सेनाओं मध्य भीषण संग्राम हुआ। राजपूत सैनिक बड़ी वीरता से लड़े और तुर्क धनुर्धारी घुड़सवार सैनिक राजपूत सैनिकों के भालों के प्रहारों का सामना करने में असमर्थ रहे। मुहम्मद गौरी की सेना परास्त हुई और युद्ध क्षेत्र से भाग खड़ी हुई। मुहम्मद गौरी स्वयं घायल हो गया और यदि उसका एक स्वामीभक्त अनुयायी उसे अपने साथ लेकर भाग न जाता तो शायद वह इस लड़ाई में मारा जाता। तराइन की इस पहली लड़ाई का केवल यह प्रभाव हुआ कि राजपूतों की विजय हुई और पृथ्वीराज ने भटिण्डा के किले को घेर लिया तथा अन्त में उस पर अधिकार कर लिया।

इसके लगभग एक वर्ष पश्चात् फिर 1192 में अपनी शक्ति संगठित कर मुहम्मद गौरी ने भारत पर फिर आक्रमण किया और दूसरी बार उसकी लड़ाई फिर पृथ्वीराज चौहान से इसी तराइन के मैदान में हुई। पृथ्वीराज ने उसका बहादुरी से सामना किया किन्तु अन्त में उसे पराजित होना पड़ा। पृथ्वीराज स्वयं कैद कर लिया गया और उसकी हत्या कर दी गई। यह **'तराइन का दूसरा संग्राम'** था। यह संग्राम ऐतिहासिक, राजनीतिक एवं सैनिक, तीनों दृष्टिकोणों से बड़ा ही महत्वपूर्ण रहा। मुहम्मद गौरी की इस संग्राम में विजय ने भारत में मुसलमानों के पांव जमा दिये और पंजाब से बंगाल तक समस्त उत्तरी भारत में उसका प्रभुत्व स्थापित हो गया। यह राज्य अंग्रेजों के आने तक चल रहा। इस प्रकार भारत में मुसलमानी शासन को स्थायित्व प्रदान करने में इस संग्राम का महत्वपूर्ण योग रहा है।

अब हम **'तराइन के दूसरे संग्राम'** का विस्तृत अध्ययन करेंगे। मुहम्मद गौरी के संग्राम का वर्णन करने से पूर्व उसके भारतीय आक्रमणों के समय की भारत की स्थिति का संक्षिप्त विवरण दे देना आवश्यक प्रतीत होता है।

मुहम्मदगौरी के आक्रमण के समय भारत की दशा—उस समय पंजाब में महमूद गजनवी के वंशज शासन कर रहे थे। मुल्तान में इस्माइलिया शियाओं का राज्य था। इन दिनों इन भारतीय मुसलमान राज्यों के साधन बहुत ही सीमित थे और हिन्दुओं का भी सहयोग उन्हें प्राप्त न था। ऐसी दशा में विदेशी आक्रमणकारियों को रोकने की क्षमता उनमें न थी।

उत्तरी भारत में उस समय चार प्रधान राज्य थे। दिल्ली और अजमेर में चौहान वंश का राजा पृथ्वीराज, कन्नौज में राठौर वंश का राजा जयचन्द, बिहार में पालवंश तथा बंगाल में सेन-वंश का राजा लक्ष्मणसेन शासन कर रहा था। इन राज्यों में आपस में बड़ा वैमनस्य था और उनमें लगातार संघर्ष चलता रहता था। पृथ्वीराज चौहान तथा जयचन्द में बड़ी भयंकर प्रतिद्वन्द्विता थी और वे एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न कर रहे थे। उत्तरी भारत के ये सभी राजा बड़े घमन्डी थे तथा किसी एक के नेतृत्व में संगठित होकर शत्रु के विरूद्ध संयुक्त प्रयास करने के लिए तैयार न थे। ऐसी दशा में उन्हें विदेशी आक्रान्ताओं के साथ पृथक्-पृथक् युद्ध करना पड़ा जिनमें उन्हें पराजय प्राप्त हुई। दक्षिण भारत के अनेक छोटे-छोटे राज्यों में भी एकता न थी और उनमें भी संघर्ष चल रहा था।

Scanned by CamScanner

पारस्परिक एकता एवं संगठन की कमी के साथ-साथ राजपूतों की सैन्य पद्धति में भी अनेक दोष थे। उनकी रण-विधि पुराने ढंग की थी जो तुर्कों के नवीन रण-पद्धति के समक्ष व्यर्थ हो जाती थी। राजपूत अपने हाथियों पर अधिक भरोसा रखते थे और उन्हें हमेशा अपनी सेना के आगे रखते थे। किन्तु तुर्क अश्वारोहियों के बाणों के बोछार के सामने ये हाथी डट नहीं पाते थे और बिगड़ जाने पर अपने ही पैदल सैनिको को कुचल देते थे। राजपूतों की पैदल सेना बहुत विशाल होती थी जिसका कुशलतापूर्वक संचालन करना कठिन हो जाता था। अत्यन्त गर्वशील होने तथा दूसरों का नेतृत्व स्वीकार न करने के कारण उनमें राष्ट्रीय भावना का अभाव था जिसके फलस्वरूप उनमें संगठन एवं सहयोग का भी नितान्त अभाव था। सेना में मुख्यतः राजपूत ही होते थे और देश की रक्षा का भार केवल उन्हीं पर था जिससे अन्य जाति वाले सैन्य-सेवा से विलग रहे और राष्ट्र को बड़ी क्षति उठानी पड़ी।

मुहम्मद गौरी के भारत पर आक्रमण के उद्देश्य—मुहम्मद गौरी ने भारतवर्ष पर कई उद्देश्यों से आक्रमण किया था। उसका पहला उद्देश्य अपने साम्राज्य का विस्तार करना था। गजनी पर अधिकार करने के उपरान्त उसने भारत की ओर अपना साम्राज्य बढ़ाना आरम्भ कर दिया।

उसका दूसरा लक्ष्य अपने राज्य को पूर्णतः सुरक्षित करना था। गजनवी वंशज पंजाब में भाग कर आ गये थे और वहां अपना प्रभुत्व स्थापित कर रहे थे। उनसे मुहम्मद गौरी के राज्य को हमेशा भय था। अतः उन्हें भी, वह समाप्त करना चाहता था।

भारत अपनी धन-सम्पन्नता के लिये पहले से ही विख्यात था। अतः धन प्राप्ति की आशा से भी उसने भारत पर आक्रमण किये। महमूद गजनवी की तरह उसने भी भारत की सम्पत्ति को लूटकर अपने देश को सम्पन्न बनाने का निश्चय किया था।

उसका एक गौण लक्ष्य इस्लाम धर्म की सेवा भी कहा जा सकता हैं किन्तु वह महमूद गजनवी की तरह कट्टर न था। मुख्यतः उसके राजनीतिक ही उद्देश्य रहे।

मुहम्मद गौरी का दिल्ली राज्य पर दुबारा आक्रमण की तैयारी एवं तराइन का दूसरा संग्राम

तराइन की पहली लड़ाई में पृथ्वीराज चौहान द्वारा अपनी पराजय को मुहम्मद गौरी भूला नहीं। उसने इस पराजय का बदला लेने का दृढ़ निश्चय कर लिया था। अतः गजनवी वापस पहुंचते ही उसने अपने उन सभी सैनिक सरदारों को जिन्होंन तराइन की पहली लड़ाई में कायरता दिखाई थी अपमानित किया और उनको पदों से हटा दिया। उसने अपनी सेना का पुनर्संगठन करना भी प्रारम्भ कर दिया। भारत पर फिर आक्रमण करने के लिए उसने तुर्कों तथा अफगानों की एक बहुत बड़ी सेना संगठित की और लगभग एक वर्ष के अन्दर ही उसने 1,20,000 कवचधारी अश्वारोही सैनिकों की सेना खड़ी कर दी।

मुहम्मद गौरी इस बड़ी सेना को लेकर दिल्ली पर आक्रमण करने चल दिया। पेशावर पहुंच कर उसने पदच्युत सैनिक सरदारों को फिर से बुला लिया और उन्हें अपने पिछले कलंक को धोने के लिये इस बार अत्यन्त बहादुरी और दिलेरी से युद्ध करने को प्रोत्साहित किया। ये सरदार भी अपनी सेनायें लेकर आ मिले और इस प्रकार लगभग डेढ़ लाख से अधिक शक्तिशाली सेना लेकर मुहम्मद गौरी ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया।

पृथ्वीराज चौहान द्वारा मुकाबले की तैयारी—इधर पृथ्वीराज चौहान ने भी सेना एकत्र करना प्रारम्भ कर दिया किन्तु इस बार उसने सेना एकत्र करने में न तो शीघ्रता ही की और

Scanned by CamScanner

न कोई विशष रूचि ली। उसके मित्र राजपूत राजाओं ने उसकी सहायता अवश्य की पर पहले की अपेक्षा इस बार कुछ राजा अपनी सेनायें भेजने को अधिक इच्छुक न थे। इस बार फिर कन्नौज के राजा जयचन्द ने पृथ्वीराज का साथ नहीं दिया। जिन राजपूत राजाओं ने सहायतार्थ सेनायें भेजी उन्होंने भी उन्हें दिल्ली भेजने में देर कर दी। अतः इस बार पृथ्वीराज चौहान पहली जैसी विशाल एवं कुशल राजपूत सेना एकत्रित न कर सका।

मुहम्मद गौरी दिल्ली की ओर बढ़ता ही जा रहा था और जब पृथ्वीराज को यह पता लगा तो उसने जितनी भी सेनायें इकट्ठी की थी, उनको लेकर आगे बढ़ा और तराइन के पहले वाले समर-क्षेत्र के निकट ही अपना पड़ाव डाल दिया।

मुहम्मद गौरी की कूटनीतिक एवं समरतांत्रिक चालें—मुहम्मद गौरी ने अपना पड़ाव राजपूती सेना की स्थिति से लगभग दस मील दूर पर ही डाल दिया। पृथ्वीराज चौहान द्वारा भेजी गई एक चेतावनी उसे यहाँ प्राप्त हुई जिसमें पृथ्वीराज ने राजपूतों की बहादुरी को याद दिलाते हुए उसे सलाह दी थी कि अपने सैनिकों की रक्षा हेतु वह बिना लड़े ही वापस चला जाये तो अच्छा होगा और उस दशा में उसकी लौटती हुई सेना को कोई हानि नहीं पहुंचायी जायेगी। इससे यह प्रतीत है कि शायद पृथ्वीराज इस समय लड़ना नहीं चाहता था।

मुहम्मद गौरी ने इस प्रस्ताव का लाभ उठाया और उसने एक कूटनीतिक चाल चली और उत्तर में यह कहला भेजा कि "आपके सन्धि के इस मित्रतापूर्ण प्रस्ताव के लिये आभारी हूं। मैं वास्तविक सुलतान अपने भाई के पास वह संदेश भेज रहा हूं कि वह इन शर्तों पर आप से सन्धि करने की अनुमति दे दे कि भटिण्डा, पंजाब और सुलतान पर गौर वंश का अधिकार रहे तथा शेष भारत पर राजाओं का राज्य रहे। जब तक उनका उत्तर न आये तब तक के लिये आप युद्ध न करने की कृपा करें।"

मुहम्मद गौरी की यह चाल सफल रही क्योंकि राजपूतों ने उसके उत्तर पर विश्वास कर अपनी तैयारी में शिथिलता डाल दी। गौरी ने इस अवसर का लाभ उठाया और तुरन्त ही राजपूत सेना पर आक्रमण करने की योजना बना ली। ताकि लापरवाह राजपूत सेना पर शीघ्रताशीघ्र आक्रमण कर उन्हें आश्चर्यान्वित किया जा सके।

मुहम्मद गौरी ने अपना भारी समान और साज-सज्जा, हाथी तथा असैनिक कर्मचारी पड़ाव में ही छोड़ कर केवल लड़ाकू सैनिक एवं अश्वारोही सेनाओं को प्रातः काल अन्धेरे में ही आगे बढ़ने का आदेश दिया, जो आगे बढ़कर राजपूती सेना के पड़ाव के समक्ष पहुंच गये। उस समय राजपूती सेना को तुर्की सेना के आ धमकने का पता लगा। इस समय राजपूती सेना के अधिकतर सैनिक शौचादि में लगे हुए थे।

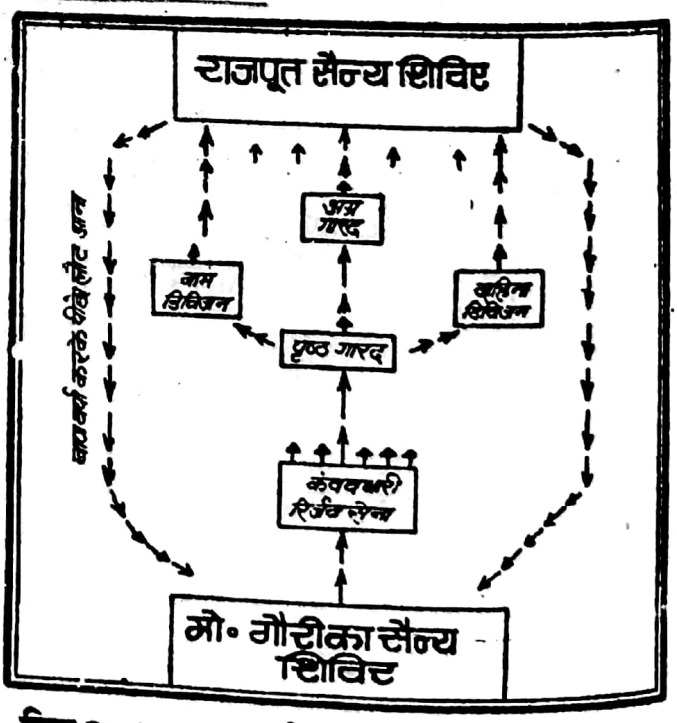

चित्र २—तराइन का द्वितीय संग्राम (११९२ ई०)

राजपूत सेना का शिविर काफी दूरी में फैला हुआ था और गौरी ने अपनी सेना को इस शिविर पर आक्रमण करने के लिये फैलाया भी नहीं। अतः राजपूतों को अपने शस्त्रादि लेकर तैयार होने का कुछ समय मिल गया और वे शीघ्र ही

Scanned by CamScanner

गौरी की सेना के समक्ष आ डटे। इस प्रकार राजपूत सेना को पूर्णतः चकित नहीं किया जा सका। फिर भी सेना को दो युद्ध-कौशलात्मक हानियां हुई—

(1) वे अपनी संग्राम योजना न बना सके और उन्हें तुर्कों के इच्छित स्थान पर युद्ध करना पड़ा।

(2) राजपूत सैनिकों को बिना कुछ खाये पिये ही युद्ध करना पड़ा, क्योंकि उन्हें भोजन-कलेवा आदि करने का समय ही न मिल पाया।

मुहम्मद गौरी की संग्राम योजना—मुहम्मद गौरी की यह योजना थी कि राजपूत अश्वारोही सैनिकों को अपनी सेना के समीप आने ही न दिया जाये ताकि वे अपने भालों का उनके ऊपर प्रयोग ही न कर सकें। मुहम्मद गौरी के अश्वारोही तथा धर्नुधारी सैनिकों के चार डिवीजन थे। प्रत्येक डिवीजन में दस हजार धर्नुधारी सैनिक थे। उसने अपनी सारी सेना को इस प्रकार विभाजित किया कि उसका एक डिवीजन आगे की ओर (अग्र गारद के रूप में), दो डिवीजन दोनों पार्श्वों में तथा एक डिवीजन पीछे के भाग में पृष्ठ गारद के रूप में लगाया गया। इनके अतिरिक्त इस रचना से काफी पीछे उसने अपनी बारह हज़ार लोह कवचधारी तथा भालों और तलवारों से सुसज्जित घुड़सवार सेना रिजर्व के रूप में लगा रखे थे। उसकी आगे वाली सेना शत्रु पर बाण वर्षा करती थी। ज्यों ही राजपूत सैनिक निकट पहुंचते थे त्योंहि वे पीछे हट जाते थे और राजपूतों को समीप नहीं आने देते थे। अपने घोड़ों को आगे-पीछे दांये-बांये दौड़ा कर राजपूत सैनिकों को अपने पीछे भागने के लिये बाध्य कर देते थे। यदि आगे या किसी पार्श्व में शक्ति निर्बल हो जाती थी तो पीछे से (पृष्ठ गारद) सैनिक आगे या दांये और बांये पक्ष में पहुंच जाते थे। इस प्रकार यह लड़ाई सुबह लगभग 9 बजे से अपरान्त 3 बजे तक चलती रही। राजपूत घुड़सवार तुर्क घुड़सवारों के पीछे भागते-भागते थक गये। भूख और प्यास के मारे उनकी लड़ाई करने की क्षमता भी कम होती गयी। इस समय मुहम्मद गौरी ने निश्चियात्मक संग्राम के लिए राजपूतों पर टूट पड़ना उपयुक्त समझा और उसने अपने चुने हुए कवचधारी तुर्क घुड़सवारों को (जो रिजर्व में थे) राजपूत सेना पर प्रबल आक्रमण कर देने का आदेश दे दिया। राजपूत सेना जो पहले से ही तितरबितर सी होने लगी थी, इस नये तीव्र आक्रमण का सामना न कर सकी। थके हुये राजपूत सैनिकों का आघात कवचयुक्त तुर्क सैनिकों पर कारगार नहीं हो पा रहा था, जबकि अभी-अभी आये हुये तुर्क सैनिकों के प्रहार बड़े ही तीव्र और तीक्ष्ण हो रहे थे। फल यह हुआ कि हजारों राजपूत हताहत हुये और उनमें भगदड़ मच गई। पृथ्वीराज को भी पकड़ लिया गया और उसका भी वध कर दिया गया। इस संग्राम में पृथ्वीराज के साथ ही उसके अन्य सहयोगी 150 राजपूत मारे गये। इस प्रकार इस संग्राम का अन्त हुआ।

इस लड़ाई के बाद दिल्ली पर मुहम्मद गौरी का अधिकार हो गया। तदुपरान्त उसने हांसी तथा अजमेर पर बड़ी सरलता से अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

तराइन के संग्राम से शिक्षायें

राजपूतों के पराजय के कारण

राजपूत इस देश के बड़े ही वीर और साहसी सैनिक रहे थे और उनमें अदम्य उत्साह, अपार शक्ति तथा तेज विद्यमान था, फिर भी तुर्कों के समक्ष पराजित होना पड़ा। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उनमें कुछ ऐसी दुर्बलतायें थीं जिनके कारण वे विदेशी आक्रमणकारियों के सामने न ठहर सके। मुसलमानों की विजय और राजपूतों के पराजय के कारण इस संग्राम की शिक्षाओं के रूप में निम्नलिखित हैं :

(1) सीमा की सुरक्षा का अभाव—यद्यपि प्राचीनतम समय से पश्चिमोत्तर पर्वतीय

Scanned by CamScanner

भागों से भारत पर आक्रमण होते रहे थे और परन्तु भारतीयों ने सीमान्त प्रदेशों की सुरक्षा का कभी भी समुचित व्यवस्था न की। फलतः तुर्क बड़ी आसानी से इन भागों को पार कर आक्रमण कर देते थे। शत्रु को अपने राज्य की सीमा से बहार रोकना चाहिए था। अगर पृथ्वीराज गौरी को पंजाब की सीमाओं से बहार रोक देता तो शायद यह संग्राम नहीं होता।

(2) भारत में राजनीतिक एकता का अभाव—भारत में उन दिनों राजनीतिक एकता का सर्वथा अभाव था। सारा देश छोटे-छोटे राज्यों में बंटा हुआ था जिनमें बड़ा भारी पारस्परिक द्वेष था और वे आपस में संघर्ष करते रहते थे। कोई भी राजा एक राजा के नेतृत्व में संयुक्त मोर्चा बनाने के लिये तैयार न था। जिसके कारण संयुक्त प्रतिरक्षा संगठन नहीं बना सके। अतः सभी को अलग-अलग अकेले लड़ना पड़ा और प्रबल शत्रु के सामने वे ठहर न सके।

(3) मुसलमानों में एकता की भावना—तुर्कों में एकता की कमी न थी। उनका एक राजा था और उनकी एक जाति थी। उसमें ऊंच-नीच की भावना नहीं थी। उनका लक्ष्य भारत के अपार धन को लूटना और इस्लाम का प्रचार करना था। जेहाद का नारा देकर उनसे बड़ी से बड़ी कुर्बानी ली जा सकती थी जबकि पृथ्वीराज के सैनिक धार्मिक कट्टरता से बंधे रहे।

(4) राजपूतों की दोषपूर्ण युद्ध पद्धति—राजपूतों के पराजय का वास्तविक कारण उनकी दोषपूर्ण रण-पद्धति थी। उनका लड़ाई का ढंग पुराना था जबकि तुर्क लोग नई रण-पद्धति से पूर्ण परिचित थे। युद्ध में सफलता के लिए सैन्य संख्या के साथ-साथ सैन्य गुण का विशेष महत्व है। मुहम्मद गौरी की आघात सामरिकी; प्रशिक्षित, गतिशील कवचयुक्त सेना के ही कारण पृथ्वीराज हारा।

(अ) राजपूतों की सेना का सबसे बड़ा दोष यह था कि उनकी सेना इतनी विशाल हो जाती थी कि उनका सुचारू रूप में संचालन और उनकी गतिविधियों पर नियन्त्रण कठिन हो जाता था। विशालता के कारण उनकी चाल भी धीमी हो जाती थी। इसके दूसरी ओर मुसलमानों की सेना छोटी होती थी जिससे वे तीव्र गति से आक्रमण कर सकती थी।

(ब) यहां पर आरक्षित सेना के महत्व का पता चलता है। राजपूतों की सैन्य पद्धति में दूसरा दोष यह था कि वे अपनी सम्पूर्ण सेना को युद्ध में लगा देते और सुरक्षा की दूसरी पंक्ति या रिजर्व नहीं रखते थे। अतः एक बार सेना के पैर उखड़ते ही भगदड़ मच जाती थी। तुर्क हमेशा रिजर्व सेना रखते थे।

(स) तीसरा दोष राजपूतों की सेना संगठन में यह था कि उनकी सेना में पैदल अश्वारोही की तथा हाथियों की सेना का मिश्रण होता था। पैदल सेना के सैनिक सबसे अधिक संख्या में थे और वे सेना के सबसे पीछे रहते थे। वे प्रायः बाधक सिद्ध होते थे। इनकी घुड़सवार सेना भी अधिक गतिशील न थी। ये हाथियों को सबसे आगे रखते जिनके बिगड़ जाने पर वे पीछे से सैनिकों को कुचल डालते थे। तुर्कों की सेना प्रधानतः अश्वारोही सेना होती थी जिनमें अच्छे नस्ल के घोड़े होते थे। अतः उनकी घुड़सवार सेना बड़ी कुशल और गतिशील होती थी। राजपूतों द्वारा प्रयोग किये गये शस्त्र तुर्कों के विरूद्ध अधिक लाभदायक सिद्ध नहीं हुये। राजपूत सामान्यतः तलवार, बल्लम और बर्छे प्रयोग करते थे जो केवल घमासान युद्ध में लाभदायक थे। इसके विपरीत तुर्क धनुष बाण का प्रयोग करते थे और दूर से ही बाण वर्षा कर राजपूत सेनाओं को अस्त-व्यस्त कर देते थे। अपनी बाण वर्षा से वे हाथियों को भी घायल कर खदेड़ देते थे।

(द) राजपूतों की रण पद्धति में एक दोष और भी था कि वे एक ही युद्ध नेता पर निर्भर रहते थे और यदि वह नेता किसी प्रकार घायल हो जाता था या मारा जाता था तो सेना तितर-बितर हो जाती थी।

Scanned by CamScanner

(5) मुसलमानों का उच्चतर नेतृत्व—सफल सैनिक कार्यवाही के लिए उच्चकोटि का सैन्य अनुशासन एवं कुशल नेतृत्व भी आवश्यक है। मुसलमानों के विजय का एक कारण यह भी था कि उनमें योग्य नेताओं की कमी न थी। मुहम्मद गौरी बड़े उच्च-कोटि का सेना नायक था।

(6) भारतीय सैनिकों के चुनाव का सीमित क्षेत्र—भारतीय सेना में केवल राजपूत ही भरती हो सकते थे। इसके परिणाम बड़े ही हानिकारक हुये। इस कारण कोई युद्ध राष्ट्रीय युद्ध का रूप न ले सका क्योंकि अन्य जातियों के लोग सैनिक सेवा से विमुख रहे। मुसलमानों की सेना ने भर्ती का बड़ा ही व्यापक क्षेत्र था और प्रत्येक मुसलमान सेना में भर्ती हो सकता था। अतः सैनिकों को प्राप्त करना भी मुसलमानों के लिये आसान था।

Scanned by CamScanner